और दिन पलाश हुए

हुश्न तवस्सुम निहाँ

और दिन पलाश हुए

'अव्वल-अव्वल की दोस्ती है अभी

इक गजल है कि हो रही है अभी

कुर्वतें लाख खूबसूरत ... हों,

दूरियों में भी दिलकशी है अभी।'

https://www.hindiadda.com/aur-din-palash-hue/

'मन के बहुपाश में आज भी वो दिन ठहरा पड़ा है। वैसे ही जब कासनी रंग के फूल खिलना शुरू ही हुए थे हमारे होंठों पे। देहों में ऋतुओं का आना-जाना शुरू भर हुआ था। पोर-पोर को वक्त के हाथ हल्के-हल्के सहला रहे थे। हमारी वय हमसे गोतम-गोता थी। और हम एक अनदेखी दुनिया को फतह करने की फिराक में थे।

हमारी कक्षा में कई रंग के चाँद थे जिसमें सबसे सुंदर तुम थे। हमारी कक्षा में कई नाजुक फूल थे, जिनमें सबसे कोमल मैं थी। छू भर लेने से कुँभला जाने वाली और तुम्हारे खिलंदड़े हाथ मुझे छूते जरूर थे। मुझे दिक् करने के लिए।

हिसाब में मैं हमेशा कमजोर रही और तुम... हिसाब के रसिया क्षण भर में सारे आंकड़े इधर से उधर कर देते। किंतु जब मैथ्स टीचर हिसाब की कापी चैक करते तो पिटते हमेशा तुम, मैं बच जाती। तुम मेरी नोटबुक का कवर बदल देते अपनी नोटबुक के कवर से और मुझे पिटने से बचा लेते। हालाँकि सारा क्लास चकित रहता, ये उल्टी गंगा कैसे बहती है। यही शमित तो टीचर के क्लास लेते समय सारे सवाल ब्लैक बोर्ड पर ही हल कर डालता है। लेकिन नोटबुक पर नहीं हल कर पाता। पिटता रहता है। जब टीचर सारी नोट बुक जाँचकर क्लास में बाँटने को कहते तो तुम फिर से नोटबुक के कवर चेंज कर लेते। मैं खुद चकित। सवालों पर 'क्रॉस' का चिद्द लगा होने के बावजूद मुझे मार क्यूँ नहीं पड़ती? आखिर कब तक? एक रोज हमारे टीचर ने ही क्लास में तुमसे यही सवाल पूछा था। तुम चंट फरिश्ते फौरन शर्त रख दी -

'सर, मैं बताऊँगा, लेकिन आपको भी मेरी एक बात माननी पड़ेगी।' स्कूल के मेधावी छात्रा होने के कारण शिक्षक तुम्हारी भावनाओं का सम्मान करते थे। तुम्हें प्यार करते थे। उन्होंने सहमति में सिर हिला दिया। तुमने फिर जो बताया वो काफी हैरान करनेवाला था -

'सर, नोट बुक कलेक्ट करते समय मैं छाया की नोटबुक से अपनी नोटबुक एक्सचेंज कर लेता हूँ। मैं नहीं चाहता उसकी पिटाई हो...।'

तुम्हारी भावनाओं का पूरा सम्मान हुआ था। उसके बाद कभी भी तुम्हें नोटबुक एक्सचेंज करने की जरूरत नहीं पड़ी थी। और मेरी पिटाई भी नहीं हुई। तुम्हारी भी नहीं। इस छाँह को मैंने प्यार नहीं जाना। पर जाने क्या जाना...। तुम पतंग उड़ाते हरी, पीली, नीली। आसमान झुक-झुक चूमता उन्हें... आओ ना... आओ... ना... तुम्हारी सूक्ष्म नजर दूर आसमान के फिरोजी आँचल से चिपकी नन्हीं बिंदु जैसी हिलती-डुलती पतंगों पर टिकी रहती और पिच्छू मैं चरखी लपेटती...

तुम्हारे अनुदेशों के अनुसार। जब कहते ढील दे, ढील देती। कहते लपेट, मैं लपेटना शुरू कर देती।

तु म गलियों में कंचे खेल रहे होते। मैं फ्रॉक में तुम्हारे कंचे सँभालती। तुम निशाना साध-साध के कंचों पर निशाने लगाते जाते, मैं खुश हो-हो चहकती रहती हँसती रहती। तुम तान के गुल्ली उछालते। मैं निहाल... तुम्हारे हीरोपने पे। मैं चमकीली कई रंगोंवाली फ्रॉक पहन बाहर निकलती। तुम देखते रह जाते। अपने गले में पड़ा काला ताबीज मेरे गले में डाल देते। नजर ना लगे... मेरी चोटी पकड़ हिलाते रहते...

'तेरे लिए एक घर बनाऊँगा... तेरी रंगतवाला... '

'और तुम कहाँ रहोगे... ?'

'तेरे घर के बाहर...।'

'क्यूँ... ?'

'तेरे घर पे पहरा दूँगा... कहीं कोई इस परी को मुझसे छीन ना ले...।'

'और तब भी कोई छीन ले जाए तो... '

'तो... ' तुम्हारी आवाज थर्राई... तो घर तोड़ दूँगा और तुझे ढूँढ़ने निकल पड़ूँगा...।'

पता नहीं किस भावना के तहत मेरी नन्हीं आँखें भर आई थीं।

मैंने कसकर तुम्हारा हाथ थाम लिया -

'नहीं शमु, अगर कोई मुझे छीनकर ले गया तो मैं उसके हाथ में दाँत काटकर भाग आऊँगी... तुम्हारे पास...।'

तुम किसी बुजुर्ग की तरह मुस्कराए थे और तुम्हारी नम आँखें भी।

'पगली।'

आठवीं पास के बाद मम्मी भड़क रही थीं।

'नहीं, लड़की को लड़कों के स्कूल में नहीं पढ़ाऊँगी। अब वह सयानी होगी। माहौल खराब है।'

पापा ने मान लिया। मैं तड़पते दिल को बाँहों में कसे बैठी रोए-रोए कर रही थी। ये कौन सी जिद है मम्मा की शमु के बगैर तो मैं एक कदम चल ही नहीं सकती, मेरी सीट कौन छेकेगा। मेरी नोटबुक कौन कम्पलीट करेगा।... पानी कौन ला के पिलाएगा ये तो... ये तो... बड़ी मुश्किल हो जाएगी...। अंततः स्कूल छोड़ना ही पड़ा था। हमारी पढ़ाई बेमन की तरह रह गई थी।

मैं लास्ट बैंच पर चिपकी बिसूरती रहती भीतर ही भीतर। सोचती रहती, कैसे तुम

मुझे सबसे आगे बैठाने का बंदोबस्त करते थे। मैथ्स के पीरियड में गदेलियों की भरसक सुताई हो जाती। बेंत गदेलियों पर चिपके रह जाते। उस दिन मैं तुम्हारे पास जरूर जाती प्रेम बाबू की बरसाती में तुमसे मिलने। तुम गदेलियाँ देखते ही चूम लेते। एक नैसर्गिक मरहम। सारी चोट दफा हो जाती।

तुम्हारी विशाल, समंदरी आँखें। अविस्मरणीय आँखें। मेरी आँखों में काजल जब भी फैल जाता, तुम आँखें फैलाए बैठे रहते और मैं उन तुम्हारी आँखें को आईने की तरह इस्तेमाल करने का उपक्रम करती। अपना फैला हुआ काजल तुम्हारी आँखों में देख-देख ठीक करने के लिए। देखनेवाले रोमाँचित हो जाते... ओ हो... हो... हो... क्या बात है... एक रोज तुमने सात रंगोंवाले गुलाब रच के मुझे सौंप दिया -

'ये लो सँभाल के रखना... ' और बेशक सँभाल के ही रखा गया। धीरे-धीरे एक अलग तरह का एहसास नुमाया हुआ। हम बाबा की बावड़ी में छुप-छुपा के मिलने लगे। चिर-प्यासे परदों की तरह। हरी-हरी घास पर पड़े-पड़े हम क्या-क्या मंसूबे बनाते रहते।

'वक्त आने दे हम भी ऐ सैय्याद

गुल तराशेंगे खार जारों से।'

तुम ख्वाबों के पंखों से मुझे बाँधते रहते। मैं चित पड़ी उन ख्वाबों का आसमान में सच होना देखती रहती। तुम उलाहते 'सुन रही हो ना... छाया... और मैं तुम्हारे सीने पे सिर रख देती।

'मगर ये सपना कब सच होगा शमित?'

मेरे सिर को सहलाते तुम बोलते -

'तब... तब, जाने मन, जब तुम मुस्कराओगी... '

मैं मुस्कराई थी और पूरी कायनात मुस्कुरा उठी। किंतु जल्दी ही ये मुस्कानें खंडहर में तब्दील होने लगीं। छज्जों से टपकती बरसाती बूँदों की तरह रीढ़ की हड्डी में उतरती हुई। जैसे रस्तों पे खाइयाँ उग आई हों।

जी में अमृत घोलते तुम्हारे शोख लफ्ज और लहजा -

'इतना शफ्फाक है तेरा चेहरा

आईने झिलमिलाने लगते हैं।'

कहीं बबूल की टहनियों में फँसा-फँसा के लहूलुहान हो गए। सहसा सारे मौसम हाशिए पर चले गए। एक वेदित असह्य समय... बिल्कुल ही विरक्त और हताश सी उस दिन तुम्हारे समीप आके बैठी थी। तुमने बारहा छेड़ा मगर मैं निरपेक्ष भाव से उचाट सी ही रही। तब तुम बोले थे हल्के से दुपट्टा मेरा खींचते हुए।

'क्या हुआ हमारी छाया रानी को... ?'

मेरी आँखों में अँजुरी भर बादल भर आए थे

'शमित, चलो बात कर लो डैडी से वर्ना बहुत देर हो जाएगी... '

किंतु तुम बुत के बुत। तुममें कोई हरकत नहीं। झिंझोड़ने पर इतना बोले थे।

'मैं बादलों के बीच डूबता हुआ सूर्य हूँ... एक लोहित यथार्थ... '

'नहीं... '

'एक पत्थर का टुकड़ा हूँ... जिसे समाज ठुकराता रहा है... तुम्हारे डैडी भी ठुकराएँगे ही... जो ठोकर मुझे तुम्हारे डैडी से मिलनेवाली है,तसव्वुर में मैं लाखों बार उस ठोकर को जी चुका हूँ।'

तुम घास पर लेट सीधे आसमान 'तक' रहे थे। आँखों में नितांत बेजारी और घोर सूनापन। निगाहें स्थिर, भाव शून्य। जैसे तुम भीतर ही भीतर टूट-टूट बिखर रहे थे। तुम्हारे सीने पर सिर रखके मैं बिलखने लगी -

'नहीं शमित, तुम्हें चलना होगा... '

तुमने मेरी जिदें टाली कब थीं, मेरे आँसुओं को ऊँगलियों में जज्बा करते एक गहरी सेंक के साथ बोले थे - 'ठीक है छाया रानी... आऊँगा... कल शाम को आऊँगा... तुम वहीं रहना... '

'सच शामित... ?'

'हाँ सच... अब सिर उठाओ, देखो, आँसुओं से सारी शर्ट भिगो दी... '

'मैं धो दूँगी...।'

'हूँ... अब इस शूद्र पुत्रा की शर्ट धोकर तुम मुझे नरक में धकेलोगी...।'

'अब तुम खुद ऐसा मानोगे...।'

'मेरा मानना ना मानना मसला नहीं है। डर तुम्हारे डैडी का है। वह ना माने तब क्या करोगी? मैं तो उस स्थिति का सामना नहीं कर पाऊँगा इसलिए खुशफहमी में ही जीना चाहता था।... किंतु कब तक... ? यथार्थ का सामना एक ना एक दिन तो करना ही पड़ेगा... '

'निराश नहीं होते शमित, मेरे डैडी बेहद खुले विचारोंवाले हैं। ऐसा कुछ नहीं होगा... हमारी शादी जरूर होगी...।'

'ओ.के... ओ.के., देखते हैं तुम्हारे डैडी कितने पानी में हैं... '

दूसरे रोज मैं दरवाजे पर पलक-पाँवड़े बिछाए बैठी थी... आएगा... आएगा...

आएगा... आनेवाला... और तुम आए तुमने अपना सबसे अच्छा सफारी सूट पहन रखा था। चेहरा एक अजब पलाशी आत्मविश्वास से दमक रहा था। मगर आँखों में किंचित् रिक्तता का भाव भी था। डैडी से मिले। बातें हुईं और फिर वही हुआ जिसका तुम तसव्वुर किया करते थे। मैं धक्क् से रह गई। तुम खाली हाथ, खाली मन से खुद को ढोते हुए लोट गए थे। मैं बालकनी में मन की बाहें फैलाए खड़ी रह गई। चाहती थी दौड़कर रोक-रोक लूँ तुम्हारा रास्ता... किंतु कहाँ... ? मानसिक संत्रास ने सब ढहा डाला सो अलग। तुमसे छूटना एक बात तुम्हारा अपमान दूसरी बात। मैं तुमसे छूट गई, तुम मुझसे छूट गए। हम दोनों एक-दूसरे से छूट गए। किंतु दूसरे खलनायकों की तरह डैडी ने मुझ पर किसी तरह का अंकुश नहीं लगाया। ना चीखे ना चिल्लाए। बाहर आते-जाते तुम्हें तलाशती रहती। किंतु तुम ऐसे गायब हुए कि बस...।

कुछ दिनों बाद सुना, डैडी ने अपने दोस्त के बेटे से मेरा रिश्ता तय कर दिया। मैं फिर भी तुम्हें तलाशती रहती। एक मौन तप लिए। हताश और निराश। फिर सात फेरों का भी समय आया मगर मैं ऐन वक्त पे मंडप से भाग निकली। आते-आते बेला को एक पर्चा थमा आई थी। तुम कभी भी उसे मिलो तो दे दे तुम्हें और कहा 'कह देना, मैं जीवन के अंतिम क्षण तक तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।'

विवाह शब्द को चुटकियों में मसल डाला। और गुवाहटी आ गई... अब... यहाँ... वंचित महिलाओं के आश्रम में स्वयं को खपा रही हूँ... सौ तरह की महिलाएँ हैं। जिनमें मैं अलग अपनी तरह की... बेशक, मैं भी वंचित हूँ, तुमसे वंचित... पुरवाइयाँ जब सहलती हैं, तो तुम याद आते... हों पछुवा मंद-मंद गुनगुनाती है तो तुम याद हो... शायद तुम्हें भी याद आती हो...।

मुंडेरों से कोई मायूस सी आवाज आती है

कोई तो याद हमको भी पसे-दीवार करता है।

भड़ाक की आवाज से सारी खिड़कियाँ एक साथ खुल गईं। और हवा के कई एक झोंके कमरे में भरभरा के घुस आए। कमरा हल्की नमी से तर गया। बस, ऐसे ही पख झोंके तो उसमें टीस घोल जाते हैं। और वह कहीं की नहीं रह जाती। जब स्मृतियों का ताप बढ़ता है। तो वह इसी डायरी को ले ले कर बैठ जाती है। आरंभ से अंत तक पढ़ती है। तब लगता है एक युग पकड़ में आ गया है। बेशक, डायरियाँ लिखते-लिखते समय पकड़ में आ सकता है। या कहें विगत। ऐसे ही कितने ही लोहित क्षण चस्पा हैं उसकी दैनंदिनी में। जब भी जी चाहे वह लफ्जों का पुल पार करती हुई समय के उस पार जा खड़ी होती है। जहाँ उसके युग का उजाला स्वांग भर-भर नाच रहा होता है। इन दस वर्षों में हजार बार उसने उस डायरी में दर्ज समय जिया है। इस नेपथ्य को जी के ही वह पूर्णतः पाती है। क्षण भर को लगा है वह उसी बाबा की बाबड़ी की क्यारियों के निकट हरी मुलायम घास पर पड़ी हुई है। आँखें मूँदे-मूँदे वह हरी घास का मुलायमपन कल्पित कर रही थी। धीमे-धीमे लहजे में सिस्टम पर धीरे-धीरे दिल में टीस घोलनेवाला गीत लहरा रहा था...

सुबह ने सेज से उठते हुए ली अँगड़ाई

ऐ सुबह तू भी जो आई तो अकेली आई

मेरे महबूब, मेरे होश उड़ानेवाले...

मेरे मसजूद मेरी रूह पे छानेवाले

आ भी जा ताकि मेरे सजदों का अरमाँ निकले

आ भी जा आ के तेरे कदमों पे मेरी जाँ निकले...

अचानक सिस्टम से सुरीली लय आनी बंद हो गई। टप से आँखें खोल दीं उसने। सामने उसकी असिस्टेंट खड़ी उसे सूचित कर रही थी -

'छाया मैम, इस इतवार को थ्री स्टार में सामूहिक विवाह का आयोजन किया गया है। यह आयोजन गुवाहटी के उद्योगपति शमित राय की ओर से किया गया है। ये वर्ष में एक बार इसी अक्तूबर माह में इसका आयोजन करवाते हैं। इसमें कोई भी भाग ले सकता है। चाहे गरीब जोड़े हों या प्रेमी युगल, और तो और अंतर्जातीय विवाह भी होते हैं।'

शीबा बड़े उत्साह से बता रही थी, आगे बोली 'ये सब यूँ ही नहीं होता इसके लिए जुलाई महीने में आवेदन फार्म आमंत्रित किए जाते हैं। इसके लिए अलग ऑफिस भी है। वहीं से फार्म लिया जा सकता है, और वहीं जमा भी होता है।' कुछ रुककर - 'छाया मैम हमारी और सलीम की शादी भी ऐसे ही हुई थी... ' शमा किंतु बक गई तो बक गई... छाया ने सुना ही कब? जी मैं हलचल सी मच गई।

'क्या नाम बताया तुमने...।'

'शमित राय... ये असल में राजस्थान के कोटा जिले से हैं शायद... बाद में यहाँ आए तो यहीं रह गए... पहले तो मैं इन्हीं के यहाँ राम-रहीम धाम में काम करती थी। बड़े रहमदिल इंसान हैं... ये... ये लीजिए इंवीटेशन कार्ड...।'

जैसे शरीर प्राणहीन हो गया। जी डूबने लगा। कमजोर हाथ से कार्ड थामा कई बार उलटा-पलटा। हर बार 'शमित राय' इन्हीं शब्दों पे आके दृष्टि ठहर जाती...।

'हाँ... ये मेरा ही शमित है... ' शीबा कब चली गई सिस्टम ऑन करके, उसे पता ही नहीं। वह तो इसी एक सवाल में उलझी थी।

'शमित... तुम मिले तो यहाँ... मेरे ही पास... '

कार्ड पे प्रिंट कान्टैक्ट नंबर पर उसने फोन घुमा ही दिया, जाने कब? चेती

तब जब उधर से कहा गया - 'हैलो... है... ल्... लो..।'

'हैलो...।'

'जी मैम।'

'शमित से बात करना है... आई मीन... शमित साहब से... '

'उनसे बात करने के लिए आप रात दस बजे के बाद फोन लगाइए।'

फोन बंद। किंतु ताब कहाँ। उसने फिर लगाया - 'सर... अर्जेंट है... मुझे उनका सेल नं. दे दीजिए... '

उसने दिया। छाया ने लिखा। डायल करने लगी। मगर उधर से आती आवाज सुन कर सन्न रह गई। यकीन ही ना हुआ ये शमित है, उसका शमित... सपनों से प्यारा शमित... इसी आवाज के लिए तो कान तरस गए। आत्मा तड़प रही थी।

उधर से हल्की झुँझलाहट -

'भई , बोलो... कौन है?'

'मैं... मैं... छाया चौहान... छाया... ' कहते-कहते वह रो दी। दस साल से थमा हुआ बाँध टूट कर बह चला था।

उधर सुननेवाला जैसे सकते में। स्वर कांपा था...

'कहाँ हो छाया... ?'

'विवेकानंद आश्रम में... '

'मैं आ रहा हूँ...।'

वह सेल बंद करके, आँसू पोंछ खुद को संयत करने लगी थी, किंतु वर्षों से जमे आँसू कहाँ थमनेवाले... चुपचाप आँखें मूँद के दोनों हाथों में सिर लिए-दिए बैठी सुबकती रही और दस वर्ष पहलेवाले शमित को टटोलती रही।

कुछ ही क्षण बीते होंगे कि दरवाजे पे दस्तक हुई। आँखें खोलीं, सामने शमित। अ... अरे... शमित तो हवा की चाल से आया है... इतनी जल्दी... शरीर ठंडा पड़ गया। मन भारी। हिलने तक की ताकत छिन गई... उठने की शक्ति तक नहीं।

आँखें फाड़े देखती रह गई... विश्वास नहीं हो रहा था कि किस्मत एक दफा फिर से उसके पाले में ढेरों उपहार छोड़ जाएगी... यही सुगम उपलब्धता व्यक्ति को साकित कर जाती है। शमित ही आगे बढ़ कर आए, उससे लगकर बैठ गए और उसे गहरी सेंक के साथ एक आवेग से बाँहों में भर लिया। वह बिलख-बिलख के रो पड़ी।

शामित उसके आँसुओं में भीगते बोले थे -

'पगली छाया, तुम्हें ही तो ढूँढ़ने यहाँ आया था। तुम्हारा संदेश बेला ने दिया था। तुम नहीं मिलीं... तो यहीं रह गया। खाली हाथ वापस कैसे जाता। संकल्प लेके आया था... कोटे जाऊँगा तो तुम्हें ले कर, वर्ना नहीं -

'मेरी आँखों में आज भी वह समय ठहरा हुआ है शमित... मैं आज भी उसी

चुक गए समय के साथ जीती हूँ... ऐसे ही जी पाती हूँ।'

'सच छाया... तुमने कितने जतन से मुझे जीवित रखा हुआ है... वर्ना... मैं तो मर ही चुका था..।'

'नहीं...।'

एक क्षण को उसने शमित के चेहरे की ओर देखा और जी उमड़ पड़ा। वो मासूम अभावों व उपेक्षाओं का मारा हुआ शमित... सहमा-सहमा ख्वार-ख्वार सा शमित... और ये... आत्मविश्वास से भरा-भरा दमकता शमित... कितनी मुश्किल से अपनी उदासियों और तन्हाइयों को समेट कर खुद को दुबारा खड़ा किया होगा।

वक्त की आँधियों व समय के संघर्षों से अटा पड़ा शमित का बन्नाबी चेहरा गेहुँआ

गंदुमी सा पड़ गया था। 'वेट' ठीक-ठाक। बालों में वही सुघड़ता। व्यक्तित्व में परिपक्वता किंतु आँखों में... विशाल सूनापन... पलाशी होंठ काँप रहे थे। उसने डायरी उठाई, उलटने-पलटने लगा, फिर उसे चूम लिया -

'छाया, अब इन पन्नों पर हमारे संत्रास, पीड़ा और आँसू नहीं दर्ज होंगे... अब यहाँ हमारे हिस्से के गुलाब महकेंगे... '

तभी शमित का सेल फोन बजा है

'हाँ, बोलो नफीस।'

'सर कुल पंद्रह पियर है... सबके लिए मंडप सजवा दिया है पंडितजी और काजी को भी वक्त बता दिया है... कल शाम छह बजे सभी आ जाएँगे... सारी व्यवस्था चाक चौबंद...। पियर्स को गेस्ट हाउस में ठहरा दिया है... '

'नफीस... नफीस... वन मिनट...।'

'यस सर।'

'एक मंडप बढ़वा दो...।'

'ओ.के. सर... उनका नाम... '

'शमित राय संग छाया चौहान'

'सर... !' एक कौतुक भरा स्वर।

'यस सर... तुम तैयारी करो...।' हल्की हँसी...।

छाया की आँखों में फिर सागर उमड़ आए तो शामित ने उलाह दिया।

छाया अब रोती भी रहोगी या अपने घर भी चलोगी।

https://www.hindiadda.com/aur-din-palash-hue/